श्रम बेचने का अमानवीय ठौर है नोएडा : नोएडा इंडस्ट्रियल एरिया के मज़दूरों की सर्वे रिपोर्ट

नोएडा इंडस्ट्रियल एरिया के मज़दूरों की सर्वे रिपोर्ट-1

पिछले दिनों जब नोएडा में अपनी माँगों को लेकर बड़ी संख्या में मज़दूर सड़क पर उतरे, तब उनके मुद्दों को मीडिया में जगह मिल पाई। हालाँकि, इस पूरे प्रकरण को एक अस्थाई समस्या के तौर पर पेश किया गया। ग़ौर करने वाली बात यह है कि मीडिया कवरेज सत्ताधारी विचारधारा के समीप रहकर एक बेहद कपटपूर्ण भाषा में मज़दूरों के प्रदर्शन को पेश करता रहा है। मीडिया रिपोर्टिंग में मुख्यत : तीन तरह की भाषाएँ इस्तेमाल की गईं। पहली : हिंसक प्रदर्शन, अशांति, नियम-कानून का उल्लंघन, पुलिस के साथ झड़प तथा हिंसा भड़काना एवं षडयंत्र रचना। दूसरी : सुनियोजित लामबंदी, भड़कीली सामग्री का उपयोग, बाहरियों/विदेशियों की संलिप्तता, तथा औद्योगिक क्षेत्रों में अशांति फैलाने का प्रयास। तीसरा : मुद्रास्फ़ीति, बढ़ती क़ीमतें, स्थिर मेहनताना तथा पड़ोसी राज्य हरियाणा में मज़दूरी में बढ़ोत्तरी इसके पीछे की वजह बताई गई। इसके इतर, मज़दूरी में इज़ाफ़ा तथा बुनियादी मुद्दों को भी कहीं-कहीं वजह बताया गया।

मीडिया की भाषा मज़दूरों के संगठित होने के प्रयास को अपराध बताने तथा मज़दूरों की आवाज़ की वैधता को पंगु करने की रही है। इस तरह का मीडिया कवरेज मज़दूरों द्वारा इकट्ठा होकर अपनी माँगों को रख पाने की काबिलियत को कठघरे में खड़ा करता है, तथा सुनियोजित अशांति, विदेशियों की संलिप्तता से जोड़कर उनको एक बेज़ुबान एवं सामूहिक कदम उठाने के नाकाबिल तबक़े के रूप में पेश करता है, जिसके पास ना तो राजनीतिक समझ है ना ही एक वर्ग के तौर पर कोई अस्मिता। हालाँकि तीसरी तरह की रिपोर्टिंग कुछ हद तक वर्तमान मुद्दों पर आंशिक प्रकाश डालती है, लेकिन मज़दूरों के मुद्दे के मूल तक पहुँचने की कोशिश नहीं करती है। सोशल मीडिया और कॉर्पोरेट स्वामित्व से स्वतंत्र मीडिया ही इसका अपवाद रहा है। उसने ज़मीनी स्तर पर जाकर मज़दूरों के वास्तविक हालात को सामने रखा है। इसके अलावा उसने मज़दूरी में वृद्धि, सामाजिक सुरक्षा एवं काम के बेहतर हालात की माँगों के लिए होने वाले प्रदर्शनों को भी कवर किया है।

बीरेंद्र यादव, Re-presented traces (पुनर्निर्मित निशान), 2023

विडंबना है कि मज़दूरों की विवशता तभी देश के ज़ेहन में जगह बना पाती है जब उनकी लाचारी सड़कों और सार्वजनिक जगहों को प्रभावित करती है। चाहे वो कोरोना महामारी के बाद लगाए गए तुग़लकी लॉकडाउन के बाद भूखे-प्यासे पैदल तथा साइकिल-बाईकों से अपने घरों की ओर बदहवास चलते प्रवासी मज़दूरों का हुजूम हो अथवा हाल में गैस सिलेंडर की किल्लत से शहरों को छोड़कर अपने गाँवों की ओर लौटते लोग। इन मौक़ों पर भी बुनियादी सवाल बुर्ज़ुआ विमर्श में जगह नहीं बना पाए। उत्तर भारत के गाँवों और क़स्बों में आख़िर किस तरह की परिस्थितियाँ ऐसी विपन्नता पैदा कर रही हैं जिसकी वजह से लोगों को शहरों में रोज़गार की तलाश में पलायन करना पड़ रहा है? शहरों में मज़दूरी इतनी निम्न कैसे है कि कुछ दिन काम बंद होते ही मज़दूरों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है? जिनके ख़ून-पसीने के आधार पर शहरों की नींव रखी गई है, और जो इन्हीं के श्रम से फल-फूल रहे हैं, वो शहर उनके लिए सिर्फ़ एक अस्थाई ठौर बनकर क्यों रह जाते हैं? जिन शहरों को वो बनाते हैं, उन शहरों में नागरिकता के बुनियादी अधिकारों से उनको महरूम कैसे कर दिया जाता है? सवालों की यह फ़ेहरिस्त लंबी है। इन सवालों से टकराए बग़ैर मज़दूरों के प्रदर्शनों को समझा नहीं जा सकता है। इनके जवाबों का दायरा भारत की वर्तमान विकास नीति तथा राजनीतिक परिदृश्य को भी समाहित करता है और भारत के सामने मौजूद आर्थिक-राजनीतिक चुनौतियों को उजागर करता है।

सर्वे का संक्षिप्त विवरण

ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान इन मुद्दों पर शोधकार्य करता रहता है। भारतीय अर्थव्यवस्था की **संरचनात्मक समस्याओं**, ग्रामीण भारत में **बेरोज़गारी और बेकारी** के कारणों, **खेती-किसानी** के संकटों, तथा अन्य समसामयिक मुद्दों पर इसके लगातार शोधपरक लेख प्रकाशित होते रहते हैं। इसके साथ-साथ, इन चुनौतियों के ख़िलाफ़ **मज़दूरों** एवं **किसानों** के प्रयासों के सूक्ष्म विश्लेषण छपते रहते हैं। इसी सिलसिले में, निर्यातोन्मुखी क्षेत्रों में मज़दूरों के मुद्दों और उनके हालात के विश्लेषण के लिए ट्राईकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान ने सन् 2018–19 के दौरान, कोरोना महामारी के आने से ठीक पहले, एक वृहत सर्वे किया था। इस सर्वे में नोएडा की गारमेंट इंडस्ट्री को चुना गया था। वर्तमान में यह क्षेत्र मज़दूरों के विरोध-प्रदर्शन का एक प्रमुख केंद्र-बिंदु है। इस क्षेत्र में विविध परिधानों का उत्पादन किया जाता है। यहाँ 500 से ज्यादा मज़दूरों को काम पर रखने वाली बड़ी फ़र्मों से लेकर, उनसे कम मज़दूरों को काम पर रखने वाली मध्यम तथा लघु आकार की फ़र्में चलती हैं।

सर्वे में शामिल मज़दूरों का मूल निवास

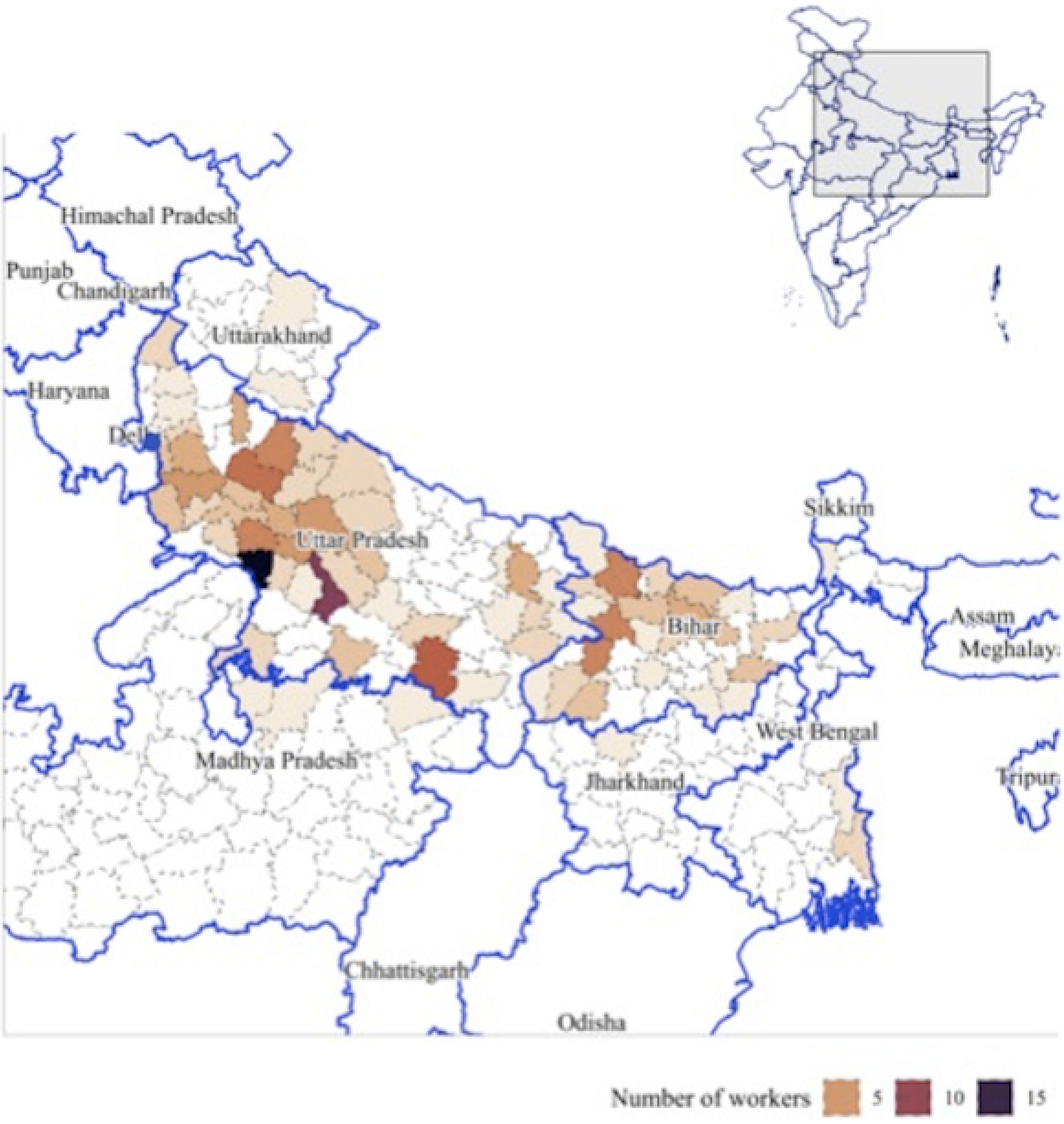

सर्वे में शामिल मजदूरों का मूल निवास

इस सर्वे में कुल 226 मज़दूरों को शामिल किया गया था। सिर्फ़ दो महिलाओं के अलावा सर्वे में शामिल सारे लोग पुरुष थे। सिर्फ़ दस मज़दूर स्थानीय इलाकों से थे, शेष प्रवासी मज़दूर थे। गारमेंट निर्यात का यह पूरा औद्योगिक क्षेत्र प्रवासी श्रम पर निर्भर है। सर्वे में शामिल मज़दूरों में 66 प्रतिशत मज़दूर उत्तर प्रदेश के निवासी थे, जबकि 27 प्रतिशत बिहार से थे। बाकी बचे 7 प्रतिशत में उत्तराखंड, पश्चिम बंगाल, झारखंड, तथा मध्य प्रदेश के प्रवासी मज़दूर थे। दिल्ली से पश्चिम के राज्यों, जैसे हरियाणा और पंजाब, के प्रवासी मज़दूरों की संख्या नगण्य थी।

ज़्यादातर मज़दूर युवावस्था में थे। करीब 37 प्रतिशत मज़दूर 25 वर्ष या उससे कम उम्र के थे जबकि 41 प्रतिशत मज़दूर 26 से 35 वर्ष के बीच थे। इनमें से 27 प्रतिशत सर्वे के वक्त अविवाहित थे।

बुनियादी ज़रूरतों से दूर

सर्वे में शामिल एक औसत मज़दूर पिछले साढ़े नौ सालों से काम कर रहा था। इसके बावजूद, मात्र 4.5 मज़दूरों के पास ही दिल्ली में कहने को अपना घर था। ये घर भी एक मंज़िला थे और बेहद संकुचित जगहों पर बने हुए थे। बाक़ी सारे मज़दूर किराए के कमरों में रह रहे थे। शहरों में केंद्रित औद्योगिक केंद्रों में लंबे समय तक उत्पादन प्रक्रिया में संलग्न होने के बावजूद मज़दूर न तो बचत कर पा रहे हैं और न ही आवास जैसी मूलभूत ज़रूरत को पूरा कर पा रहे हैं। शहरी भूमि और आवास बाज़ार पर पूंजी का नियंत्रण अत्यधिक केंद्रीकृत है। भूमि की ऊँची कीमतें, रियल एस्टेट का वित्तीयकरण, और सस्ती आवासीय योजनाओं का अभाव, ये सभी मिलकर मज़दूरों को किराए के दड़बेनुमा आवास में रहने के लिए मजबूर करते हैं। यहाँ आवास एक सामाजिक अधिकार न होकर एक ऐसी बाज़ारू वस्तु (commodity) बन चुका है जो ये मज़दूर सालों की कमाई के बाद भी हासिल नहीं कर सकते।

दो तिहाई मज़दूरों के पास रहने के लिए एक कमरा भी मयस्सर नहीं था। उन्हें अन्य मज़दूरों के साथ एक ही कमरे में रहना पड़ता था। साझा कमरों में रहने वाले मज़दूरों में क़रीब 30 प्रतिशत 4 या उससे अधिक लोगों के साथ एक ही कमरे में रह रहे थे। एक मामला तो ऐसा भी देखने को मिला जिसमें एक ही कमरे में 15 लोग रहने को मज़बूर थे। कई कमरे ऐसे थे जिनमें एक साथ सारे किराएदार सो नहीं सकते थे। ऐसे में अपने काम के शिफ़्ट के अनुसार लोग कमरों में बारी-बारी सोते थे। रहने के लिए एक निजी कमरा तक न होना श्रम के सस्तीकरण की पराकाष्ठा को दर्शाता है। मुनाफ़े को अधिकतम रखने के लिए पगार इतनी कम दी जाती है कि वो श्रमिकों के पुनरुत्पादन की लागत के लिए भी पर्याप्त नहीं है। भीड़भाड़, साझा आवास, और शिफ्ट के अनुसार सोने की व्यवस्था पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में श्रम के शोषण के अमानवीय स्तर को दर्शाता है।

बीरेंद्र यादव, Life Tools (जीवन के औज़ार) सिरीज़ से, 2021

सिर्फ़ 8.4 प्रतिशत मज़दूरों के मकान में सार्वजनिक जल आपूर्ति उपलब्ध थी। 11 प्रतिशत घरों में शौचालय नहीं था, तथा 10 प्रतिशत घरों में पानी की व्यवस्था नहीं थी। जबकि 9 प्रतिशत घरों में बिजली की आपूर्ति नहीं थी। मज़दूरों के रहने के अमानवीय स्तर को बदतर करने में सरकार भी कम ज़िम्मेदार नहीं है। जहाँ एक ओर उच्च-वर्गीय इलाक़ों में अत्याधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वहीं श्रमिक वर्ग के लिए न्यूनतम जीवन-स्तर भी सुनिश्चित नहीं किया गया है।

रहने के हालात इतने अमानवीय तब थे, जब एक औसत किराएदार मज़दूर अपने मासिक वेतन का एक-चौथाई हिस्सा कमरे के किराए पर ख़र्च कर रहा था। मज़दूरों का अस्तित्व पूँजी के लिए तभी तक मायने रखता है, जब वह उत्पादन प्रक्रिया में उनके श्रम-काल का इस्तेमाल कर पाए। उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त होने के बाद ये एक त्याज्य वस्तु बन जाते हैं। त्याज्य वस्तु ये सिर्फ़ पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया के लिए ही नहीं हैं, अपितु शहरी बुर्ज़ुआ वर्ग तथा बुर्ज़ुआ सरकारों के लिए भी हैं।

त्याज्य वस्तु बन चुके इन प्रवासी मज़दूरों के लिए नोएडा जैसे औद्योगिक शहर मात्र अपना सस्ता श्रम बेचने की जगहें हैं। अमानवीय परिस्थितियों में रहने वाले इन मज़दूरों के श्रम से इन शहरों की आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है। त्याज्य वस्तु बनने की परिस्थिति सीधे तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त कृषि संकट एवं बेतहाशा बेरोज़गारी से जुड़ी हुई है। इस सर्वे रिपोर्ट के अगले भाग में हम मज़दूरों के त्याज्य वस्तु बनाने वाले कारकों पर इस सर्वे के नतीजों के आलोक में चर्चा करेंगे।

-उमेश यादव

उमेश यादव